नईदुनिया

Date: 30-05-18

इंडोनेशिया से याराना बढ़ाने का वक्त

वक्त का तकाजा है कि हम साझा महत्व के मुद्दों को केंद्र में रखकर सार्थक चर्चा के माध्यम से भरोसे का उच्च स्तर कायम करें।

गुरजीत सिंह, (लेखक इंडोनेशिया में भारत के राजदूत रहे हैं)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के पहले इंडोनेशिया दौरे की शुरुआत हो चुकी है। इससे पहले इंडोनेशियाई राष्ट्रपति जोको विडोडो ने 2016 और फिर जनवरी, 2018 में भारत-आसियान शिखर सम्मेलन के लिए भारत का दौरा किया। हाल में जर्मन, चीनी और रूसी नेताओं के बाद पीएम मोदी अब राष्ट्रपति विडोडो से मिलेंगे। वर्ष 2014 में म्यांमार में आयोजित पूर्वी एशियाई सम्मेलन में पहली बार मुलाकात के बाद दोनों नेता हर साल एक बार मिलते हैं। भारत और इंडोनेशिया दुनिया में सबसे ज्यादा मुस्लिम आबादी वाले देश हैं जो युवा, आकांक्षी और विकास को लेकर प्रतिबद्ध हैं। दोनों देश जी-20, नैम, ईएएस, आईओआरए, एआईआईबी और ऐसे ही कई समूहों के सदस्य हैं। इन समानताओं और भारत के अंडमान एवं इंडोनेशिया के असेह द्वीप के बीच अपेक्षाकृत कम दूरी के बावजूद रिश्ते वैसे परवान नहीं चढ़े। दोनों देशों की हजारों वर्ष प्राचीन विरासत, संस्कृति और व्यापारिक संपर्क हैं। इंडोनेशिया में हिंदू, बौद्ध और इस्लाम का प्रसार भारत के माध्यम से ही हुआ। योग्यकार्ता में प्रम्बानन हिंदू मंदिर और बोरोबुदूर बौद्ध मंदिर और रामायण एवं महाभारत का प्रभाव इस पुराने जुड़ाव के चिन्ह हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी भारत और इंडोनेशिया एक-दूसरे के करीबी रहे। 1950 में गणतंत्र दिवस की पहली परेड में राष्ट्रपति सुकर्णो ही मुख्य अतिथि थे। फिर 1970 के दशक में संबंधों में कुछ दुराव आया, जो 1990 के दशक के अंत तक इंडोनेशिया में लोकतंत्र की पुनर्स्थापना तक जारी रहा। उसके बाद से संबंधों में कुछ सुधार आया है।

संरक्षणवाद की चुनौती झेल रही दुनिया में भारत व इंडोनेशिया अपनी परस्पर जरूरतों की पूर्ति के साथ-साथ क्षेत्रीय एवं वैश्विक एजेंडे को सिरे चढ़ाने में मिलकर काफी कुछ कर सकते हैं। 2011 में भारत और इंडोनेशिया रणनीतिक साझेदार बने जिसमें सहयोग के लिए तमाम बिंदुओं को शामिल तो किया गया, लेकिन उन्हें पूरी तरह अमली जामा नहीं पहनाया गया। ऐसे में उन पहलुओं से निजात पाने की दरकार है, जो संबंधों में अपेक्षित तेजी की राह में अवरोध बने हुए हैं। रणनीतिक साझेदारी को सिरे चढ़ाने के लिए कुछ अहम पहलुओं पर विचार करना होगा। अरसे से लंबित कुछ द्विपक्षीय वार्ताओं ने पिछले साल ही तेजी पकड़ी है। उन्हें लेकर प्राथमिकता सूची तैयार करने के साथ हमें तुरंत फैसले लागू करने चाहिए। सामुद्रिक सुरक्षा, सतत विकास जैसे तमाम क्षेत्रीय एवं वैश्विक महत्व के मुद्दों पर गहन चर्चा हमें करीब लाएगी। चीन और बीआरआई को लेकर इंडोनेशिया का नजरिया हमसे कुछ अलग है और दक्षिण चीन सागर को लेकर भी वह मुखर नहीं। हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत की चार देशों को लेकर बन रही संभावित चौकड़ी को लेकर वह कुछ सशंकित हो सकता है, लेकिन वह सामुद्रिक सुरक्षा को संतुलन देने में भारत के महत्व को भी बखूबी समझता है। इंडियन ओशन

रिम्स एसोसिएशन में वह भारत का पूरा समर्थन और इस्लामिक देशों के संगठन में भारत विरोधी अभियान का विरोध करता है। वक्त का तकाजा है कि हम साझा महत्व के मुद्दों को केंद्र में रखकर सार्थक चर्चा के माध्यम से भरोसे के उच्च स्तर को कायम करें। इधर रक्षा, सामुद्रिक सहयोग और अंडमान एवं मलक्का जलडमरूमध्य के बीच अभ्यास और गश्त बढ़े हैं। भारतीय नौसेना एवं तटरक्षक दल और इंडोनेशियाई नौसेना के बीच भी सहयोग बढ़ा है। हम इंडोनेशिया को रक्षा उपकरणों की आपूर्ति के साथ ही वहां उनके संयुक्त उत्पादन के लिए शोध एवं विकास की संभावनाएं तलाश सकते हैं। भारत सुमात्रा के रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण बंदरगाह में भी निवेश कर सकता है। यह नौसेना के लिए निर्णायक साबित हो सकता है। इसे आसियान इन्फ्रास्ट्रक्चर योजना के तहत मूर्त रूप दिया जा सकता है।

भारत के लिए व्यापार के मोर्चे पर कटौती संभव नहीं होगी, क्योंकि वह इंडोनेशिया से बड़ी तादाद में कोयला और पाम ऑयल आयात करता है। इससे व्यापार में पलड़ा इंडोनेशिया की ओर झुका रहता है। यह झुकाव और बढ़ेगा, क्योंकि तकरीबन पांच लाख भारतीय सैलानी इंडोनेशिया जाते हैं। भारत में इंडोनेशियाई निवेश से इसकी भरपाई की जा सकती है। तेजी से बढ़ते इंडोनेशियाई बाजार के लिए बुनियादी ढांचे, बिजली, खनन और स्वास्थ्य जैसी अन्य सेवाओं के लिए भारतीय उद्यमियों के साथ जुगलबंदी इस मामले में फायदेमंद होगी।

भारतीय कारोबारियों की सहूलियत के लिए इंडोनेशिया को त्वरित रूप से फैसले लेने वाली व्यवस्था बनानी चाहिए, ताकि उन्हें वहां अपने व्यावसायिक हित सुरक्षित नजर आएं। अधिकांश भारतीय कंपनियों को लगता है कि इंडोनेशिया में चीनी कंपनियों को तरजीह दी जाती है। ऐसे में इंडोनेशिया को भारत के साथ मेलजोल बढ़ाना होगा। यदि हवाई अड्डे, बंदरगाह, अस्पताल, बिजली संयंत्र और खनन जैसे पांच बुनियादी ढांचागत क्षेत्रों में काम तेजी से जोर पकड़ता है तो इसके दूरगामी प्रभाव होंगे। बेहतर होगा कि इंडोनेशिया मेक इन इंडिया के तहत कम से कम पांच निवेश प्रस्तावों पर आगे कदम बढ़ाए। पाम ऑयल, खाद्य प्रसंस्करण, सड़क और राजमार्ग जैसे क्षेत्रों में इसे बढ़ाया जा सकता है। मांस के अतिरिक्त दवा, चावल, चीनी और बुनियादी ढांचा उपकरणों के लिए भी इंडोनेशिया को भारत के लिए दरवाजे खोलने चाहिए। इंडोनेशिया के लिए पाम ऑयल और कोयला बेहद महत्वपूर्ण हैं और भारत उसे लंबी अवधि के अनुबंध का आश्वासन दे सकता है।

मानव संसाधन और शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी कुछ किए जाने की गुंजाइश है। दोनों देश मुख्य रूप से युवा आबादी वाले हैं, जहां उन्हें बेहतर शिक्षा और अवसरों की आवश्यकता है। अधिकांश इंडोनेशियाई छात्र भारत में मजहबी तालीम के लिए आते हैं, जबकि भारत से इक्का-दुक्का छात्र ही वहां जाते हैं। ऐसे में विश्वविद्यालयों को साझा परियोजनाओं, संकायों और छात्रों के आपसी विनिमय की जरूरत है। सांस्कृतिक, मानविकी, प्रबंधन और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सभी में इसे बढ़ाना चाहिए। साथ ही साझा सांस्कृतिक विरासत को भी समय के साथ सहेजना होगा। इसके तहत साझा पुरातात्विक परियोजनाएं शुरू की जा सकती हैं। नियमित रूप से आयोजित किए जाने वाले रामायण महोत्सव से कला एवं नृत्य के क्षेत्र में विकास को प्रोत्साहन मिलेगा। साथ ही नहदलाला उलमा और मुहम्मदिया जैसे मुख्यधारा के मुस्लिम संगठनों के साथ भी सक्रियता से काम करने की जरूरत है, क्योंकि वे चरमपंथ के खिलाफ सबसे कारगर जरिया साबित हो सकते हैं। एक बहुलतावादी लोकतंत्र के रूप में हमें इंडोनेशिया के समक्ष भारत की तरक्की की तस्वीर दिखाकर युवाओं को शिक्षा व कौशल विकास की राह से जोडना होगा। भारतवंशियों के माध्यम से और इस तरह की नागरिक समाज सहभागिता के जरिए उन उम्मीदों को नए पंख लगेंगे, जिनकी प्रधानमंत्री मोदी के इस दौरे से अपेक्षा की जा रही है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 29-05-18

स्वास्थ्य का हाल

संपादकीय

भारत ने स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता और पहुंच के मामले में अपनी स्थिति को बेहतर **किया** है। और 195 देशों की सूची में 145वें स्थान पर आ गया है। **हालांकि** श्रीलंका, बांग्लादेश और भूटान जैसे देश इस मामले में भारत से आगे हैं। यहां तक कि सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले चीन की स्थिति भी भारत से बेहतर है। शोध **एजेंसी** लैंसेट ने अपने अध्ययन में इस बात का खुलासा किया है। मगर सवाल यही कि देश में स्वास्य सेवाएं इतनी बदहाल, खस्ताहाल, जर्जर और गैरजिम्मेदार क्यों है? आखिर क्यों 70 साल बाद भी जनता सामान्य चिकित्सा सुविधाओं से महरूम है? ठीक है, 125 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में हर **किसी** को स्वास्य सुविधाएं मुहैया कराना बेहद कठिन है, मगर इस दुश्वारियों को काफी हद तक कम तो किया ही जा सकता है। और यह एकीकृत पहल से ही संभव है। **स्वास्य** संबंधी मुद्दे हमारे यहां कभी भी चुनावी जनादेश का हिस्सा नहीं रहे हैं। हां, कुछ राज्यों में इसे शामिल करने का फायदा वहां के आमजनों को जरूर मिला है।

हालांकि देश ने स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र **में** काफी प्रगति की है, यहां जीवन प्रत्याशा भी **बढ़ी** है और शिशु मृत्यु दर में भी काफी गिरावट आई है; इसके बावजूद अभी भी देश को स्वास्य के क्षेत्र में नियंतण्र **मानकों** को हासिल करने के लिए लंबा रास्ता तय करना है। वैसे भारत की ताकत कुशल चिकित्सा जनशक्ति, आईटी विशेषज्ञ और विनिर्माण उद्योग है, और इसका लाभ भारत उठा सकता है। **लेकिन** कई महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं, जिसे नीति-**नियंताओं** को दुरुस्त करना होगा। मसलन-खराब गुणवत्ता, भ्रष्टाचार, **उत्तरदायित्व** और नैतिकता में कमी, नसरे, डॉक्टरों और **उपकरणों** की कमी को हर हाल में दूर करना होगा। देश में अभी 1000 **की** आबादी पर 0.6 डॉक्टर, 0.8 नर्स और 1.5 **बिस्तर** हैं। इसे बेहतर स्थिति में लाना होगा। विश्व स्वास्य संगठन की **रिपोर्ट** के अनुसार, भारत में जहां स्वास्य सेवा पर कुल खर्च में सरकार की हिस्सेदारी महज 30 फीसद ही है, वहीं **ब्राजील** में यह 42 से 58 फीसद, चीन में 58 फीसद, रूस में 52 फीसद, दक्षिण अफ्रीका में 50 फीसद, अमेरिका में 48 **फीसद** और इंग्लैंड में 83 फीसद है। यहां तक कि जीडीपी में स्वास्य क्षेत्र की हिस्सेदारी महज 1.6 प्रतिशत है। लिहाजा काम भले पहाड़ जैसा हो, किंतु इससे निबटने में ही **सबकी** भलाई है।

Date: 29-05-18

आर्थिक संकट की आहट

प्रभात पटनायक

पिछली बार भारतीय अर्थव्यवस्था को 2013 में ही, आर्थिक वृद्धि के साथ कमोबेश लगातार जारी रही गरीबी में बढ़ोतरी से भिन्न, गंभीर वृहदार्थिक खलल या संकट का सामना करना पड़ा था। यह तब हुआ था जब रुपये के मूल्य में भारी गिरावट हुई थी। उसके बाद से देश को ऐसे किसी संकट का इसके बावजूद सामना नहीं करना पड़ा था कि वह लगातार चालू खाता घाटे की मार झेल रहा था। ऐसा दो विशेष कारणों से था। पहला, अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के दाम नीचे बने रहना, जिसने भारत के आयात बिल को और इसलिए चालू खाता घाटे को सीमित बनाए रखा था। दूसरा, वित्त का सुगम प्रवाह, जो अमेरिका में ब्याज की दरें घटाए जाने का परिणाम था। इसने विश्वीकृत वित्त के लिए इसे एक आकर्षक विकल्प बना दिया था कि अपने फंड भारत जैसे देशों की ओर मोड़े जाएं जहां अपेक्षाकृत ऊंचा ब्याज मिल रहा था।इसका अनुमान लगाने के लिए चतुराई की जरूरत नहीं थी कि यह स्थिति हमेशा चलती नहीं रह सकती थी। अमेरिका को भाड़े या ब्याज से कमाई करने वालों के हित में देर-सबेर अपनी ब्याज की दरें बढ़ानी ही थीं।

अमेरिका में ब्याज की दरों का उठना शुरू भी हो गया था, और उसके जोर पकड़ने पर भारत को वैसे भी भुगतान संकट का तो सामना करना ही था। लेकिन संकट के इस स्रेत के अपना असर दिखाने से भी पहले ही संकट का दूसरा स्रेत सामने आ गया। कच्चे तेल के अंतरराष्ट्रीय दामों में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए खतरा खड़ा हो गया है। अरसे से तेल उत्पादक देशों के संगठन ओपेक में एक राय नहीं थी। सऊदी अरब दामों में गिरावट को पलटने के लिए तेल उत्पादन में किसी भी प्रकार की कटौती का विरोध करता आ रहा था। अन्य सदस्य देश चाहते थे कि यह कार्टेल उत्पादन को घटाए तथा कीमत ऊपर उठाए। लेकिन वे सऊदी अरब के विरोध की काट नहीं कर सकते थे। फिर हुआ यह कि तेल के घटे हुए दाम की मार खुद सऊदी अरब पर भी दिखाई देने लगी जो तेल की कमाई पर बहुत ज्यादा निर्भर है। इसलिए 2016 में सऊदी अरब ने अपना रुख बदल दिया। अब तेल के उत्पादन में कटौती करने का फैसला हो गया। इस निर्णय के पक्ष में रूस ने भी हामी भर दी जो एक और बड़ा तेल उत्पादक देश है।

कच्चे तेल के दाम आखिरकार कहां जाकर रुकते हैं, यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा। लेकिन, कोईशक नहीं कि 2018 के दौरान, और 2019 के दौरान भी, कच्चे तेल के दाम में कोई गिरावट नहीं होने जा रही। इससे अन्य अनेक कच्चे मालों के दाम बढ़ेंगे और विश्व बाजार में तैयारशुदा मालों के दाम में उछाल आएगा। यह दबाव भारत में पहले ही देखा जा सकता है। यहां चूंकि सरकार ने बेतुका नियम बना रखा है कि आयातित तेल के दाम में किसी भी बढ़ोतरी का बोझ सीधे-सीधे आगे खिसका दिया जाए। इसके चलते मई के मध्य के बाद गुजरे सप्ताह में घरेलू बाजार में पेट्रोल तथा डीजल के दामों में भारी बढ़ोतरी हुई है। लेकिन दामों में बढ़ोतरी के मुद्रास्फीतिकारी परिणामों के अलावा भुगतान संतुलन की गंभीर समस्याएं भी पैदा होने जा रही हैं। अनुमान है कि ब्रेंट क्रूड के दाम बढ़कर 80 डॉलर प्रति बैरल हो जाने से आयात बिल में 50 अरब डॉलर की बढ़ोतरी हो जाएगी। वास्तव में वित्त वर्ष 2018-19 के दौरान जीडीपी के हिस्से के तौर पर चालू खाता घाटा बढ़कर 2.5 फीसद हो जाने का अनुमान है। बेशक, इससे अपने आप में फौरी तौर पर अर्थव्यवस्था में कोई बड़ा खलल नहीं पड़ना चाहिए था बशत्रे पर्याप्त मात्रा में वित्तीय प्रवाह देश में आ रहे होते। लेकिन इसके संकेत दिखाई दे रहे हैं कि वित्त ने भारतीय अर्थव्यवस्था की ओर से मुंह फेरना शुरू कर दिया है। रुपये का मूल्य गिर कर एक डॉलर के लिए 68 रुपये के स्तर पर पहुंच जाना इसी का सबूत है। याद रहे कि यह तब हो रहा है, जब रिजर्व बैंक रुपये को थामे रखने के लिए विदेशी मुद्रा का अपना खजाना खाली करता जा रहा है।

अब तक भारतीय अर्थव्यस्था में वित्त का प्रवाह इतना बना रहा था कि उससे न सिर्फ चालू खाता घाटे की भरपाई हो जाती थी, बल्कि चालू विनिमय दर पर विदेशी मुद्रा भंडार में बढ़ोतरी भी हो रही थी। रिजर्व बैंक द्वारा विदेशी भंडार को बनाए रखने की कोशिश की जा रही थी ताकि रुपये की विनिमय दर में बढ़ोतरी के कारण विदेशी बाजार में भारत के प्रतिस्पर्धात्मकता पर चोट न आए। इसके चलते अब से कुछ ही महीने पर देश का विदेशी मुद्रा संचित भंडार 400 अरब डॉलर से ऊपर निकल गया था। लेकिन अब इसमें कुछ गिरावट आई है क्योंकि वित्तीय प्रवाह चालू खाता घाटे की भरपाई करने के लिए नाकाफी रह गए हैं। रुपये के अवमूल्यन के चलते ही कुल वित्तीय प्रवाह में और गिरावट होने जा रही है, और यह नकारात्मक भी हो सकती है यानी प्रवाह की दिशा पलट कर वित्त का बाहर जाना शुरू हो सकता है। इसलिए कि रुपये का अवमूल्यन, उसकी कीमत में और गिरावट की प्रत्याशा पैदा करता है। इसके दो कारण हैं। पहला, देश के सामने मौजूद भुगतान संतुलन की कठिनाइयों का लगातार बने रहना। दूसरा, मुद्रास्फीति का बढ़ना, जो इस समय देखने को मिल रहा है। यह रुपये के और ज्यादा वास्तविक अवमूल्यन की ओर ले जाएगा। रुपये का ऐसा वास्तविक अवमूल्यन, और ज्यादा अवमूल्यन की प्रत्याशा तथा और ज्यादा वास्तविक उन्मूलन के दुष्चक्र में धकेल रहा होगा। लेकिन चूंकि रुपये के अवमूल्यन से तेल का रुपया आयात मूल्य तो विश्व बाजार में कच्चे तेल का मूल्य 80 डॉलर प्रति बैरल के स्तर पर टिक जाने के बावजूद बढ़ ही रहा होगा, तेल की बढ़ी हुई आयात लागत फौरन खरीददारों की ओर "आगे बढ़ाने' की सरकार की मौजूदा नीति से मुद्रास्फीति लगातार चल रही होगी।

मुद्रास्फीति का ऐसे जारी रहना इसका अतिरिक्त कारण बन जाएगा कि अवमूल्यन की प्रत्याशाएं और उनके जरिए वास्तविक अवमूल्यन पैदा करे। इस तरह की प्रत्याशाएं असर दिखाती हैं, जो अर्थव्यवस्थाएं कमजोर स्थिति में होती हैं, इनके दुष्चक्र में फंस जाती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था, अपनी प्रकटत: ऊंची वृद्धि दर के बावजूद मूलत: एक कमजोर अर्थव्यवस्था ही बनी रही है क्योंकि यह अपने भुगतान संतुलन को संभालने के लिए सट्टेबाजाराना वित्त के प्रवाहों पर नाजुक ढंग से निर्भर बनी रही है। अब उसके सामने ऐसे दुष्चक्र का खतरा ही आ खड़ा हुआ है।